आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458
नवरचना NAVRACHNA
www.grefiglobal.org/journals/navrachna.2017
वर्ष 3, अंक 1–2, जून–दिसम्बर 2017, पृ. 29–32

महिला सशक्तीकरण का यथार्थ : संस्कृति एवं संचार

अरुण कुमारी सिंह

महिला सशक्तिकरण आज के समय में जितना महत्वपूर्ण है उतना ही संवेदनशील भी। समाज की संस्कृति का मापदण्ड उस समाज में रहने वाले नागरिकों के लिये निर्धारित आचार विचारों की व्यवस्था से किया जाता है जो संचार के माध्यमों से पीढ़ी दर पीढ़ी प्रसारित होता है।

भारतीय समाज की लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की है जो धर्म एवं संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक परिवार के माध्यम से पहुँचाने का महत्वपूर्ण दायित्व पूरा करती है। इसके बावजूद संस्कृति के संस्तरण में उन्हें अन्य या दूसरे दर्जे की नागरिक ही माना और प्रचार–प्रसार किया जाता है। आज वही महिला अधिकार विहिन, असहाय, शोषित और अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रही है। तब प्रश्न उठता है कि महिलाओं के इस स्वरूप का यथार्थ क्या है? तथा इसमें संस्कृति एवं संचार की भूमिका क्या है।

संस्कृति संस्कारों की सम्यक् प्रवृत्ति और सीखा हुआ व्यवहार है। सुसंस्कारों की योजना एवं सांस्कृतिक विचारों की अभिव्यक्ति की शक्ति से इसका निर्माण एवं विकास होता है और अभिव्यक्ति संचार के माध्यम से होती है। विश्व मंच से जब महिलाओं के सशक्त करने के लिये चेतना का प्रवाह हुआ जो आज ऐसे पीपल वश्क्ष के रूप में दिखायी दे रहा है जो महिलाओं को भी छाया नहीं दे रहा।

पाश्चात्य देशों में भौतिकवादी संस्कृति का महत्व है अतः वहां 'स्व' की अवधारणा महिला सशक्तिकरण का आधार मानी जाती है परन्तु भारत आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत का केन्द्र रहा है जहां महिलाओं को परिवार एवं समाज का केन्द्रीय तत्व माना जाता था यही कारण था कि महिला को सृजनकर्ता, निर्माणकर्ता और देवी के रूप में सांस्कृतिक स्वीकृति प्राप्त थी।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यनते रमन्ते तत्र देवता'' की विचारधारा में पुरूष से अधिक नारी की महत्ता प्रगट होती है। जब जब आवश्यकता हुई और संकट आया, मानव ही नहीं देवताओं ने भी माता भगवती को ही सहायतार्थ पुकारा, इसके प्रमाण संस्कृति में है। (धन की देवी) सरस्वती (ज्ञान की देवी) और दुर्गा (शक्ति की देवी) के रूप में महिला सर्वोपरि तथा सम्मान की पात्र रही थी। पुरूषों से पहले स्त्री का नाम लिया जाता था। भारतीय संस्कृति के इतिहास को देखे तो विदुषी महिलायें, यज्ञ की ब्रह्मा, ज्ञानवान, अच्छी प्रशासक और अच्छी माँ मानी गयी थी। वेदों का सन्देश था, मनुभवः और प्रादुर्भाव

---

*एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, बमली, मंडला, म.प्र.

था। विभाजन रहित समाज जो मानव को वैचारिक दृष्टि से जोड़ता है लिंग आधार पर नहीं। सामान्यतः एक पत्नीव्रत का पालन होता है। महिलाओं के लिए कु., सुश्री, श्रीमती शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था, बल्कि देवी शब्द से सम्बोधित किया जाता था। महिला का अलंकरण उसका ज्ञान माना जाता था मौर्य काल में महिला के अलंकरण को आभूषणों से जोड़ा जाने लगा तथा मोहनजोदड़ों की संस्कृति में शिल्पांकन कर महिला के बाहरी अवतरणों को महत्व दिया गया। अच्छी प्रशासक होने के बाद भी उसे गणिका की श्रेणी में रखा जाने लगा। भारतीय नारी के इस गौरवशाली इतिहास से क्रमशः नारी को एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। ऋग्वेद काल से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी, उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति में महिलाओं की स्थिति में गिरावट दिखाई देने लगी। धर्मसूत्रों में बालविवाह के निर्देश खोज महिलाओं को शिक्षा से वंचित करने की शुरूआत की, बाल विधवाओं के लिये सती के विकल्प निकाले। गोस्वामी तुलसीदास जी ने महिलाओं की तुलना पशुओं से कर उसे प्रताड़ना का अधिकारी कह दिया। पुत्र एवं पुत्री के जन्म के समय भेद–भाव तथा महिलाओं को सुरक्षा की दृष्टि को आधार मान पिता पति और पुत्र के अधीन कर दिया पुरूष की बढ़ती अधिकार शक्ति ने महिलाओं को अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं में सुरक्षित बताकर नीतियों और मान्यताओं में समाहित कर दिया और स्वयं उसका मालिक बन गया। यही से महिलाओं की स्थिति को पुरूष रचित धार्मिक व सांस्कृतिक पश्ष्ठभूमि से जोड़कर इस तरह प्रस्तुत किया कि महिलायें पीढ़ी दर पीढ़ी इस मानसिकता से प्रभावित रहे और उसका प्रसार करें।

सोची समझी व्यवस्था के तहत महिलायें लिंग असमान आचार संहिता को प्राप्त हुयी। 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है' के कथन को चरितार्थ करती हमारी संस्कृति ने वास्तव में औरत को औरत बना दिया। धन, शक्ति और ज्ञान की देवी को न्यायोचित अधिकार से वंचित रखा। महिलाओं के आदर्श पतिव्रत तथा पुरूषों के लिये आदर्श पत्नीव्रत आवश्यक नहीं। पति को देवता, स्वामी, अन्नदाता माना, पुत्र को वंश का रखवाला उत्तरधिकारी, कुलदीप मोक्षदायक, चिता में अग्नि देने वाला तथा वृद्धावस्था का सहारा कह महत्व दिया तो कन्याओं को बेचारी, पराया धन, डोली से अर्थी तक का सफर शोषण व अधीनता से घिरा बताया। विवाह के पश्चात् उपनाम के साथ नाम भी बदल दिया जाना पूर्णतः उसके अस्तित्व को समाप्त कर देता है। कम उम्र में विवाह, विधवा होने पर पुनः विवाह के अधिकार तथा जीवन की सुविधाओं से वंचित कर दिया जाना। महिलायें पति व पुत्र की लम्बी आयु के लिये व्रत रखती है पूजा करती है, अच्छा कार्य एवं बड़ों का सम्मान करने पर आशीर्वाद भी मिलता है तो महिला को नहीं बल्कि उसके पति एवं पुत्र के लिये (सौभाग्यवती भवः एवं पुत्रवती भवः) होता है। जो संदेश देता है कि महिलाओं का अस्तित्व पति एवं पुत्र से है।

संस्कृति मानसिक विकास का आधार होती है। महिलाओं के लिये निर्धारित एवं सोची समझी सुनियोजित व्यवस्था के तहत महिलाओं को ही इस विकृत संस्कृति का वाहक बना दिया, धार्मिक पुस्तकों में तथाकथित लेखकों ने इस विचाराधारा को आगे बढ़ाया।

भारतीय संस्कृति का आदर्श ग्रन्थ रामचरितमानस सीता को आदर्श माना गया, पति का साथ देने वाली सीता की अग्नि परीक्षा, वन में निष्कासन, पृथ्वी में समा जाना, सीता का व्यवस्था से विरोध नहीं बल्कि विधि का विधान कहा गया, जब कि सीता की सुरक्षा का दायित्व तो श्री राम का था। मानवलोक एवं देवलोक में पूज्यनीय देवी सीता की इस मौन पीड़ा को विवेकानन्द जी ने स्वीकार

करते हुये कहा कि ''अविचलित भाव से मुख से आह निकाले बिना सीता जी ने महादुखःमय जीवन व्यतीत किया'' महाभारत की द्रोपदी को सम्पत्ति समझ जुए में हारना तथा भरी सभा में परिवार जनों के सामने द्रोपदी का चीर हरण करना, महिलाओं के अपमान का विकृत रूप रहा था।

परिवार की व्यवस्था के साथ पिता एवं पति का सहयोग कर दोहरी भूमिका निभाने वाली महिला पिता, पति एवं पुत्र के अधीन हो गई। परिवार व धर्म की चहारदीवारी में कैद सेविका, याचिका, निःसहाय और कमजोर बन लिंग विभेद, लिंग असमानता एवं लिंग दबाव के कारण अस्तित्वहीन हो गयी। इतना ही नहीं नैतिकता का इतना पतन हुआ कि बोल–चाल की गालियां भी स्त्री को आधार बना कर दी जाने लगी, मां और बहन ऐसी दुर्गति युगों से प्रताड़ित, पीड़ित एवं तिरस्कृत नारी की दयनीय स्थिति को अनुभव कर मैथलीशरण गुप्त कह पढ़े ''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।''

19वीं शताब्दी से 20 शताब्दी तक सुधारवादी युग था और सुधार के केन्द्र में महिलायें थी। इस शताब्दी में महिलाओं ने अपनी सफलता का परिचय दिया और एक नारा आया ''हम भारत की नारी है, फूल नहीं चिंगारी है।'' इस समय दुनिया में माना कि विकास का आधार महिलायें ही हैं और प्रगति की कुंजी भी, यहीं से वास्तव में महिला सशक्तीकरण की चेतना का विकास हुआ और नारीवादी चिन्तन एवं स्त्री–विमर्श पर चिन्तन की शुरूआत हुयी। स्वतंत्र भारत के संविधान में लिंग के आधार पर समानता दी गई परन्तु संविधान निर्माताओं ने आर्थिक व राजनैतिक स्वतंत्रता दी परन्तु परिवार और विवाह के संदर्भ में जेन्डर की समानता देने को तैयार नहीं थे, उनका मानना था कि यह एक कानून के दायरे में आता है।

1980 के बाद से समाज के विकास में महिलाओं की सहभागिता देखी गयी। आज महिलायें हर क्षेत्र में श्रेष्ठता साबित करती जा रही है और समाज के विकास में योग दे रही है। 1993 में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की नीति ने पंचायत में ग्रामीण महिलाओं को 33% आरक्षण देकर महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास आरम्भ किया परन्तु राज्य सभा और लोकसभा में आम सहमति नहीं बन पाना तथाकथित महिला सशक्तिकरण के नारे तथा योजनाओं ने आर्थिक, सशक्तिकरण के लिये नौकरियों में 33% स्थानीय निकायों में, 50% संगठित क्षेत्रों में, 20% आरक्षण तथा पैतृक सम्पत्ति में महिलाओं को समान अधिकार दिया। वास्तविकता यह है कि क्या आरक्षण की वैशाखी से महिलाओं को सशक्त किया जा सकता है? क्या इससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव आयेगा।

वर्तमान समय की भौतिकवादी विचारधारा में कुविकसित, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यतायें तथा नैतिक मापदण्ड आज भी विकसित है। पित्र–सत्ता के व्यवस्था में धर्म एवं संस्कृति की जड़े इतनी गहरी है कि यह बदलाव महिलाओं की दिशा तो बदल सकता है दशा नहीं। सुधारों में पूरा जोर इस बात पर है कि बदलाव के बाद मान्यताओं और परिवारिक जीवन में कोई परिवर्तन न आये। आज भी महिलाओं के सामाजिक और कार्यात्मक योगदान को समाज में स्वीकारा नहीं जाता। अर्थव्यवस्था का दो–तिहाई कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता है परन्तु उसका 10 प्रतिशत अंश भी उन्हें प्राप्त नहीं होता, परिवारिक कार्य और बच्चों की देखभाल का भी आंकलन नहीं होता। राष्ट्रीय सांख्यकीय संगठन की रिपोर्ट के अनुसार महिलायें परम्पराओं से निकल कर पुरूषों के साथ काम कर रही है, दैनिक

गृह कार्यों में जहां महिला 6 घंटे कार्य करती है वहीं पुरूष केवल आधा घंटे कार्य करता है क्योंकि गृह कार्य का सांस्कृतिक और सामाजिक दायित्व महिलाओं का है।

भारत में स्वयं की सेहत पर खर्च का निर्णय 26% ग्रामीण एवं 29.7% नगरीय महिलायें ही ले पाती है तथा घरेलू सामान की खरीदी पर 7.6% ग्रामीण एवं 10% नगरीय महिलायें ही स्वयं निर्णय लेने की हक रखती है यह आधुनिक अधीनता है।

कार्यों के दोहरे दायित्व के बाद भी महिला स्वतंत्र एवं सशक्त नहीं है लड़कियों की घटती संख्या उनके अस्तित्व पर प्रश्न और विकृत संस्कृति और संस्कारों का प्रतीक है। देश में शिक्षित व कामकाजी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है उसी अनुपात में कन्या भ्रूण हत्या, यौन शोषण, दहेज के लिये हत्या या आत्महत्या की विवशता, निर्वस्त्र घुमाना, उनकी क्षमताओं और योग्यताओं का उचित मूल्यांकन न होना, घर, परिवार, नातेदार, बस, ट्रेन तथा पार्क जैसे सार्वजनिक स्थानों पर छेड़छाड़ तथा सामूहिक बलात्कार, नाबालिग कन्याओं के साथ बलात्कार , मोबाइल द्वारा अश्लील बातें SMS और M.M.S. के प्रकरण, भय और उत्पीड़न पैदा कर रहे है। इसके लिये कोई नैतिक मापदण्ड तथा सुधार के स्थान पर संचार क्रान्ति के युग में लड़कियों को मोबाईल न देने की नसीहत बार–बार हमारे नेता देते है, घरेलू हिंसा विरोधक अधिनियम के बाद घरेलू हिंसा के एक प्रकरण में कर्नाटक उच्च न्यायालय के माननीय जज का कथन 'पति से पिटनें में क्या हर्ज है'।

दिन–प्रतिदिन घटित होने वाली इन घटनाओं से महिलायें न घर में सुरक्षित है न ही घर के बाहर। जब पिता ही बेटी का काल बन जाये (आयुषि हत्याकाण्ड), जब सुरक्षा देनी वाली पुलिस अत्याचार एवं सामूहिक बलात्कार थानों में करे, जब नेतृत्व देने वाले नेता तथा न्याय देने वाले न्यायधीशों के वक्तव्य अमानवीय हों, जब काम के बदले अस्मत मांगी जाय, जब साहित्य पत्र–पत्रिकायें, टी. वी. सोशल साईट महिलाओं को देह से अलग कुछ न माने तब महिला सशक्तीकरण के यथार्थ पर प्रश्न, संचार के व्यवसायीकरण पर सवाल, और संस्कृति की निरीहता तथा पुरूष की विकृत मानसिकता महादेवी वर्मा के इस कथन की याद दिलाती है कि–''नितान्त बर्बर युग में नारी केवल विनोद और अधिकारों की वस्तु समझी जाती थी परन्तु आज के सभ्य एवं वैज्ञानिक युग में नारी के लिये यही बर्बरता का युग है।''

यदि वास्तव में महिला सशक्तीकरण लाना है तो महिलाओं को सक्षम बनाना होगा तथा समाज तथा समाज और संस्कृति को महिलाओं के प्रति मानसिकता बदलनी होगी उन्हें देवी और दासी नहीं सहयोगी मानना होगा।